४. अंतर्विरोधों की दुनिया में विकल्प

वैकल्पिक पत्रकारिता को पहचान बनाने और संसाधन जुटाने के लिए ज्यादा कसरत करनी पड़ती है। इसके लिए वह तैयार भी होती है, लेकिन जब तक वह अगली तैयारी करने में जुटती है, तब तक उसके सामने से गाड़ी चल पड़ती है। प्लेटफार्म पर सबसे पहले पहुंचने के बावजूद उसकी आंखों के सामने से ट्रेन निकल पड़ती है। क्या यह यात्री की नासमझी है या समय का तकाजाकहना मुश्किल है। इस पर कोई समाजशास्त्र के अध्येता ही मुंह खोल सकते हैं। वैसे कहने वालों की कमी नहीं है। जैसे बीमारियों का इलाज करने की समझ किसी डाक्टर में होती है, लेकिन प्रवृत्तिमूलक रोग की दवा हर कोई बता देता है।

कहने का अभिप्राय यह है कि वैकल्पिक पत्रकारिता को वर्तमान समय में उलझाने की कोशिश की जाती है और वैकल्पिक पत्रकारिता उस दिशा से बाहर निकलना चाहती है। उसके पास पाठक हैं, जो सिर्फ विज्ञापन पढ़ने के लिए ही अखबार नहीं खरीदते हैं बल्कि एक विचार को सही रूप से देखने के लिए अखबार या पत्रिका खरीदते हैं। सही अर्थों में पत्रिकाओं और पत्रों के जरिये जनता की भावना और उसकी अभिव्यक्ति को नयी दिशा दी जाती है।

वैकल्पिक पत्रकारिता के समक्ष अभिव्यक्ति की समस्याएं हैं, यानी अभिव्यक्ति-स्वातंत्र्य का संकट इसे ही क्यों झेलना पड़ता है; इसलिए कि यह पत्रकारिता जिस सच को स्थान देती है, उस सच को मुख्यधारा की पत्रकारिता स्थान नहीं दे पाती है। वैकल्पिक पत्रकारिता शासक वर्ग की नीतियों को चुनौती देते हुए यह साबित करने की कोशिश करती है कि शासक वर्ग की नीतियों में कहां खामियाँ हैं, उन खामियों को कैसे दूर किया जाय, यही तो विकल्प है; जिस पर शासक वर्ग को आपत्तियां होती हैं और आपत्तियां उठते ही शासक वर्ग की तरफ से

Scanned by CamScanner

कानून के डंडे बरसने लगते हैं। इसके कई उदाहरण दिखते हैं, जिनका विश्लेषण अपेक्षित नहीं है, क्योंकि वैकल्पिक पत्रकारिता से जुड़े पत्रकार इस संकट को झेल रहे हैं और उन सभी चुनौतियों का मुकाबला कर रहे हैं। वैसे मुख्यधारा की पत्रकारिता इस संघर्ष का नोटिस तक भी नहीं लेती है। इसके बावजूद वैकल्पिक पत्रकारिता की जय-यात्रा जारी है।

इस वैकल्पिक पत्रकारिता के अंतर्गत लेखक और लेखन पैदा करने की शक्ति होती है। लेखन में धार होती है। इस पत्रकारिता के लेखकों को अपने विचार प्रस्तुत करने की आजादी है। खुलकर बहस करने का जमीर इसी लेखन में होता है। वास्तविकता को स्थान देने की क्षमता इसी पत्रकारिता में होती है। वास्तविक चरित्र को उभारने की दूर-दृष्टि इस लेखन का मौलिक अधिकार है। इस मौलिक उद्‌भावना के माध्यम से समाज को जाग्रत बनाने की दिशा में इस पत्रकारिता के एक-एक शब्द महल बनाने की एक-एक ईंट की बराबरी करते हैं। सच्चे अर्थों में वे शब्द नींव की ईंट हैं और जहां नींव मजबूत होगी, वहां दीवार मजबूत करना आसान होता है। मजबूत दीवारों से अपेक्षा रखना खराब नहीं है।

पत्रकारिता जगत से जुड़े विशेषज्ञों और विश्लेषकों का मानना है कि पूंजी के अभाव में सिर्फ श्रम की बदौलत वैकल्पिक पत्रकारिता का प्रसार बढ़ता जा रहा है। इस प्रसार को कभी गुणवत्ता के आधार पर देखने की कसरत की जाती है, तो कभी कलावादी तरीकों से उस पर हमला किया जाता है। इस तरह के हमलों में वैकल्पिक पत्रकारिता का चेहरा और निखरता है। इस निखार से उसकी कार्य-क्षमता बढ़ती है। इससे इसका महत्त्व और हस्तक्षेप बढ़ता है। हस्तक्षेप करने के चलते विरोध उत्पन्न होता है।

विरोध को दार्शनिक आधार देने से विकल्प पैदा होता है। इसी विकल्प को देखकर सत्ता के गलियारों में चक्कर लगाने वाले महाप्रभुओं को भय सताने लगता

है। ऐसी स्थिति में यदि शासक वर्ग की आंखें लाल हो जाती हैं, तो क्या गुनाह है? इस गुनाह को देखकर क्षमा करने की मुद्रा अपनाने के भी दृष्टांत नजर आते हैं। इन दृष्टांतों का विश्लेषण करते हुए इतिहास के जानकारों का मानना है कि यह मुद्रा एक तरह से शासक वर्ग की चालाकी है। इसका कदापि अर्थ यह नहीं है कि वैकल्पिक पत्रकारिता खाये-पीये-अघाये लोगों की चालाकी से अनभिज्ञ है। वह अनभिज्ञ नहीं है, इसलिए तो शासक वर्ग को सिर्फ इस पत्रकारिता से खतरा है।

जहां मुख्यधारा की पत्रकारिता पर एक तरह से नियंत्रण रहा है। जहां सरकारी तंत्र हर क्षेत्र में विनियंत्रण को बढ़ा देता है, वहीं इस क्षेत्र में वह अपना नियंत्रण नहीं खोना चाहता है। इस बारे में यह कहना अनुचित नहीं होगा कि जिस तरह एक समय ब्राह्मणों ने भय को नियंत्रित कर समाज में अपना वर्चस्व स्थापित किया था, ठीक उसी तरह वर्तमान समय में मुख्यधारा की पत्रकारिता पर अपना वर्चस्व या नियंत्रण कायम कर सरकारी तंत्र अपना शिकंजा कायम करना चाहता है। पर जनतंत्र के मजबूत होने से उसका नियंत्रण कमजोर हो जाता है।

नियंत्रण कमजोर होते ही जनता के दरबार में निरीह-कमजोर- अदना-सा मामूली व्यक्ति बनकर पूछता-फिरता है कि कहां गलती हुई। जो कल तक अपनी शेखी बघारने में कोताही नहीं करता था, वह अचानक गिड़गिड़ाने क्यों लगता है? समाज-शास्त्र के अध्येता कहते हैं कि उसके प्रयोग में गलती हुई थी। इस गलती का लाभ जहां मुख्यधारा की पत्रकारिता उठाती है, वहीं वैकल्पिक पत्रकारिता उस गलती का ऐतिहासिक कारण खोजकर एक युग-सच को हाजिर करती है। कहने का अभिप्राय यही है कि युगीन सच को वैकल्पिक पत्रकारिता ही स्थापित कर सकती है। इसके बिना युग का सच उपस्थित नहीं हो सकता है।

Scanned by CamScanner

युग-सच जब तक सही संदर्भ में समक्ष नहीं आता है, तब तक वास्तविकता का विश्लेषण नहीं हो सकता है। युग-सच यही है कि वर्तमान समय के महाप्रभु कान से देखते हैं और आंख से सुनते हैं। इस उत्तर- उत्तरआधुनिकता ने मानव के इंद्रियबोध को बदल दिया है, जिस बदलाव पर मुख्यधारा की पत्रकारिता बराबर पर्दा डाल रही है और वैकल्पिक पत्रकारिता उस पर्दे को उठाने का काम करती है। मुख्य रूप से इन दोनों पत्रकारिताओं के बीच यही द्वंद्व है। इस द्वंद्व को सपाटता के रूप में नहीं देखकर सामाजिक अंतर्विरोध के रूप में देखना लाजिमी है।

अंतर्विरोधों के वास्तविक विश्लेषण के बिना युग-सच को स्थापित करना मुश्किल है। यदि युग-सच मुनाफा है, तो वैकल्पिक पत्रकारिता इसका उद्घाटन करती है, यदि युग-सच बाजार की ताकत है, तो वैकल्पिक पत्रकारिता इस ताकत पर प्रहार करती है और प्रौद्योगिक विकास को एक हथियार के रूप में इस्तेमाल करती है। इसकी अर्थवत्ता भी उजागर करती है। उजागर करने की इस प्रक्रिया के जरिये वैकल्पिक पत्रकारिता की पहचान बनती है तथा संसाधन जुटाने की दिशा में वह दो-चार कदम आगे बढ़ती है। इस अग्रगति का ताना-बाना साहित्य-संस्कृति- दर्शन-इतिहास से बना होता है, जिसका लक्ष्य है संघर्षशील तबकों के संघर्ष को ऊर्जस्वित करना।

वस्तुत: वैकल्पिक पत्रकारिता समाज को ऊर्जा देती है और हर ऊर्जावान को महाकवि जायसी के तोते की तरह बतलाती है कि एक और पद्मिणी है, जो थोड़ी ही दूर पर है, जिसके लिए रत्नसेन की तरह तपस्या करने की जरूरत नहीं है बल्कि उससे एकजुटता कायम करना जरूरी है।

वैकल्पिक पत्रकारिता की वास्तविक पहचान

भारत में वैकल्पिक पत्रकारिता का भविष्य भारत की तरह उज्ज्वल है। उसका विस्तार जोर-शोर से होने लगा है। समाज पर उसका असर गहरा है। समाज को धीरे-धीरे यह भरोसा हो रहा है कि वैकल्पिक पत्रकारिता के जरिये ही कुछ हो सकता है। कुछ होने का मतलब साफ है। जनता के सवाल को वैकल्पिक पत्रकारिता ही रखती है तथा एक जनमत तैयार करने की कोशिश करती है।

विगत दो दशकों में इसका आधार जिस तरह मजबूत हुआ है, ठीक उसी तरह इसकी दृष्टि साफ हुई है। इस आधार पर यह नहीं कहा जा सकता है कि वर्तमान की सारी समस्याओं का हल वैकल्पिक पत्रकारिता के जरिये प्राप्त हो जायेगा। आमतौर पर समस्याओं का निराकरण जनता चाहती है। कभी-कभी यह भी देखा जाता है कि निराकरण के नाम पर जो प्रस्तुत किया जाता है, उससे नुकसान ही ज्यादा होता है। इस नुकसान को समझने के नाम पर जब तक समय बिताया जाता है, तब तक गंगा में बहुत पानी इधर से उधर गुजर जाता है। हर समस्या को सुलझाने के नाम पर समय का अभाव दिखाकर एक शार्टकट रास्ता अपनाया जाता है। यही वह बिन्दु है, जहां एक-दूसरे रास्ते का जन्म होता है।

वैकल्पिक पत्रकारिता की मांग इसलिए बढ़ रही है कि शिक्षित जनता को यह महसूस होने लगा है कि इसके जरिये ही कुछ संभव है। ऐसा भी सुनने को मिलता है। यह भी कहा जाता है कि इसके माध्यम से मुद्दे उछाले जा सकते हैं। उन मुद्दों के आधार पर गोलबंदी की जा सकती है। जनता की गोलबंदी से जनतंत्र मजबूत होता है। जनतंत्र के मजबूत होने से जनता के हित में कानून बनना संभव होता है तथा जब जनता के पक्ष में कानून बनता है, तो उसका लागू होना भी संभव होता है। इससे पूरे समाज को आगे बढ़ने में सुविधा होती है।

Scanned by CamScanner

सच तो यह है कि मानव-सभ्यता को इस वैकल्पिक पत्रकारिता ने एक नयी ऊर्जा दी है।

इस पत्रकारिता के अंतर्गत उस तरह का दुरुस्तीकरण नहीं दिखता है, जो दुरुस्तीकरण मुख्यधारा की पत्रकारिता के भीतर दिखता है। मुख्यधारा की पत्रकारिता जनमत बना देती है और सरकार को अभयदान देती है। उसकी प्रवृत्ति समाज के उन तबकों को प्रभावित करने की होती है, जो तबका इस देश में शासन चलाने के नाम पर लूट मचाये हुए है। इस तबके ने भारत में लूट की संस्कृति को जन्म दिया है। इससे भारत और भारतवासियों को हर दृष्टि से पीछे हटने के लिए मजबूर होना पड़ रहा है। इस मजबूरी का लाभ बहुराष्ट्रीय कम्पनियों को मिल रहा है। सिर्फ लाभ ही नहीं बल्कि इस देश में उन्हें अपना पैर फैलाने का मौका मिल रहा है।

मौका मिलने के साथ-साथ उन्हें इस देश को कुचलने का भी साहस मिल रहा है। अपनी मर्जी के अनुसार उल्टी गंगा बहाने में इन कम्पनियों का जोड़ा खोजना मुश्किल है। इन कम्पनियों ने विगत 20 सालों में क्या दिया है? क्या किसी मुख्यधारा के अखबार ने इसकी समीक्षा की है या आने वाले समय में इसकी समीक्षा करेगा। कारण इसका स्पष्ट है।

सच तो यह है कि जिस तरह जनता की जनता द्वारा जनता के लिए चुनी हुई सरकारों ने उन कम्पनियों के समक्ष घुटने टेक दिये हैं, ठीक उसी तरह मुख्यधारा की पत्रकारिता ने उन कम्पनियों की इच्छा के समक्ष खुद को सौंप दिया है। मजबूरन ही सही; लेकिन इस तरह मुख्यधारा की पत्रकारिता को उन कम्पनियों के समक्ष खुद को सौंपना नहीं चाहिए था। इस धारा की पत्रकारिता के पास दृष्टि और दृष्टि के साथ-साथ पूंजी है। मुख्यधारा की पत्रकारिता पूंजी और दृष्टि के चलते इस निजाम को बदल सकती थी तथा गरीब-मेहनतकशों को आगे बढ़ा

सकती थी। उनके बच्चों को शिक्षित करने तथा रोजगार दिलाने के लिए भरसक और कारगर अवसर मुहैय्या कर सकती थी।

इस ओर मुख्यधारा की पत्रकारिता ध्यान नहीं देती है। सच तो यह भी है कि सामाजिक-सांस्कृतिक मुहिम चलाने से भी मुख्यधारा की पत्रकारिता पीछे हटती है। आज इस पत्रकारिता की ताकत को आंकना भी कठिन है। किस अखबार के पीछे कौन-सी बहुराष्ट्रीय कम्पनी खड़ी है यह कहना मुश्किल है, क्योंकि यह सम्बन्ध उन दोनों का गोपनीय सम्बन्ध है। धीरे-धीरे जीवन से जुड़े सभी क्षेत्रों में उनका वर्चस्व बढ़ गया है। वर्चस्व बढ़ने की रफ्तार भी काफी तेज है। इस तेज रफ्तार को देखकर ऐसा महसूस होता है कि संतुलन ही खो गया है।

अखबार के विशेषज्ञों का कहना है कि इस उत्तर-उत्तर आधुनिकता काल में संतुलन खो बैठना ही सबसे बड़ा रोग है। इस रोग का निदान उसी तरह असंभव है, जिस तरह आधुनिक काल में कैंसर रोग का जन्म हुआ और आज तक इस रोग का निदान असंभव ही बना रह गया। बीसवीं सदी गुजर गयी। मानव सभ्यता के विकास को विभिन्न तरह से सजाने में इस सदी ने चाहे जो कुछ प्रदान किया हो, पर दो-दो विश्व-युद्ध और कैंसर जैसा रोग इस सदी ने ही दिया है। अभी तो 21वीं सदी का एक ही दशक गुजरा है, इसी बीच इसने डिजिटल युग में मानसिक असंतुलन जैसा रोग दे दिया है।

मुख्यधारा के अखबारों का शायद ही कोई ऐसा दफ्तर हो जहां मादक पदार्थों की सेवन-शैली की वीभात्सता न दिखती हो। सिर्फ इतना ही नहीं बल्कि वहां की गुटबाजी की कथा भी कम घिनौनी नहीं होती है। दैनंदिन कार्यों से लेकर पेंशन प्राप्त करने की प्रक्रिया पर संकट की तलवार लटकती रहती है। जिसकी चर्चाएं होती हैं। देखते-देखते वे चर्चाएं विस्फोटक घटना बन जाती हैं। कहने के लिए मुख्यधारा की पत्रकारिता, शान दिखाने के लिए उसके पास है शासन का डंडा,

Scanned by CamScanner

आगे बढ़ने के लिए हैचमक-दमक का फंडा और करने के नाम पर वही घिनौनी कार्य, जो मानव-समाज के लिए अपेक्षित नहीं है। यदि यही इस उत्तर-उत्तरआधुनिक काल की प्रवृत्तियां हैं, तो उन प्रवृत्तियों को क्यों न बदला जाय, क्या मुख्यधारा की पत्रकारिता में इतनी ताकत है कि उन प्रवृत्तियों को बदल दे।

सुधारने के लिए ही सही यदि कहीं से किसी तरह की कोशिश की जाती है, तो यह बात समझ में आती है कि इस मुख्यधारा की पत्रकारिता से उम्मीदों की रोशनी आ रही है, पर रोशनी नदारद है। कहने का अभिप्राय यही है कि मुख्यधारा की पत्रकारिता में चाहे जितना जलवा हो, इसका पूरा लाभ खाये-पीये-अघाये लोगों को ही मिलता है। इसमें प्रतिबद्धता खासकर सामाजिक-सांस्कृतिक प्रतिबद्धता कम होती है। इसकी कमी होना ही इस धारा की पत्रकारिता की प्रमुख विशेषताएं हैं।

उन विशेषताओं का विश्लेषण-विवेचन चाहे जिस रफ्तार में हो, लेकिन मुख्यधारा की पत्रकारिता की दिशा और उसकी ऊर्जा को जनता के वृहत्तर-स्वार्थ में लगाना नामुमकिन है। जब इस धारा की पत्रकारिता से समाज के व्यापक हिस्सों को लाभ नहीं पहुंचाया जाता है। ऐसी स्थिति में समाज का यह वृहत्तर हिस्सा क्या करे, संघर्षशील तबका क्या मैदान छोड़कर भाग जाय, ऐसा तो होना नहीं है। इसलिए शुरू-शुरू में बचने के लिए ही सही शिक्षित जनता का एक संवेदनशील हिस्सा आगे बढ़ने के नाम पर विकल्प देने की कोशिश करता है।

विकल्प प्रस्तुत करना खुद में एक कठिन कार्य है। हर कोई विकल्प नहीं दे सकता है और न जब-तब विकल्प खुद पैदा हो जाता है। विकल्प प्रस्तुत करने का ऐतिहासिक कारण होता है। आर्थिक-सामाजिक-राजनीतिक कारण उस ऐतिहासिक कारण को ठोस रूप देने का प्रयास करते हैं, जब समाज यह महसूस करने लगता है कि यह विकल्प ठीक है, तो उसकी चर्चा होने लगती है। चर्चा

होने से रास्ता खुलता है। यदि चर्चा में दृष्टि होती है, तो लोग उससे जुड़ने लगते हैं। एक नयी दिशा की तलाश में आगे बढ़ने की लगातार पहल से शायद मानव जीवन के विकास का पहिया एक-दो इंच आगे बढ़ जाता है।

वैकल्पिक पत्रकारिता को इसी दृष्टि से समाज में स्थापित करने के उद्देश्य से हमारा पढ़ा-लिखा समाज लगा हुआ है। निश्चित तौर पर यह क्षेत्र न आनंद देता है और न मुनाफा। यह क्षेत्र संघर्ष का क्षेत्र है और जहां संघर्ष है वहां निर्माण है। यह निर्माण की घड़ी किसी कीमत पर किसी के लिए न आनन्दप्रद रही है और न भविष्य में शायद रहेगी; क्योंकि एक नयी भावना को स्थापित होने में समय लगता है। यह समय भीतर ही भीतर समाज को आलोड़ित करता है।

वैकल्पिक भावना की ताकत का अंदाजा लगाने की कोशिश की जाय, तो चीन का नाम लेना अनुचित नहीं होगा जहां जीवन के सभी क्षेत्रों में वैकल्पिक भावना को प्रस्तुत करने का प्रयास किया गया और उसका एक हद तक परिणाम भी सामने आया है। इससे मानव जीवन को लाभ हुआ। लेकिन यह भी सच है कि उसकी जो ताकत बढ़ी, उससे अन्य देशों को क्या लाभ मिला यह बड़ी बात नहीं है बल्कि उसे ज्यादा लाभ मिला, तभी तो आने वाले समय में आर्थिक तौर पर वह सबसे बड़े देश के रूप में उभरने का दंभ भरता है, वैसे अभी दुनिया में वह सबसे बड़ा दूसरा अर्थ सम्पन्न देश है। पर इस मुकाम पर वह एक क्षण में नहीं पहुंच गया।

यहां तक पहुंचने में उसने जनता के हित में जनता की प्रगति के लिए एक विशिष्ट दर्शन का लगातार प्रयोग किया। इस प्रयोग के चलते ही उसकी प्रगति होती रही, जब तक उसका यह प्रयोग जारी रहेगा और सही दिशा में प्रयोग चलता रहेगा, उसका कोई बाल-बांका नहीं कर सकता है।

Scanned by CamScanner

वैकल्पिक पत्रकारिता भी फिलहाल प्रयोग करने के दरम्यान गुजर रही है। इसके अंतर्गत कोशिश तरह के प्रयोग हो रहे हैं। प्रयोग सामूहिक तौर पर भी जारी है, व्यक्तिगत तौर पर भी जारी है। यह भी नहीं कहा जा सकता कि व्यक्तिगत तौर पर वैकल्पिक पत्रकारिता को आगे नहीं बढ़ाया जा रहा है।

मुख्यधारा की पत्रकारिता यदि संख्या में कम है तो उसका प्रभाव व्यापक है। इस सच पर शायद ही किसी को शक नहीं है। विज्ञापन और विज्ञापन की सही व्यवस्था ने इस धारा की पत्रकारिता को काफी ऊंचा उठा दिया है। वैसे देखा जाय तो वैकल्पिक पत्रकारिता में विज्ञापन और विज्ञापन काफी कम जगह घेरते हैं। वैसे इसके भी अपवाद मिलते हैं। यह भी कहा जाता है कि बड़े-बड़े अधिकारी-पदाधिकारी अपने-अपने जिम्मेदारी छोड़कर इस वैकल्पिक पत्रकारिता से जुड़ रहे हैं। इसके स्वागत भी हुए हैं। लेकिन एक हद तक उनके जुड़ने से वैकल्पिक पत्रकारिता को थोड़ा लाभ मिलता है। इस लाभ को पहचान और संशोधन के रूप में देखना ही उचित है।

वैकल्पिक पत्रकारिता को पहचान बनाने और संसाधन जुटाने के लिए ज्यादा मशक्कत करनी पड़ती है। इसके लिए वह पैदल भी होती है, लेकिन जब तक वह अपनी पैसे करने में जुटती है, तब तक उसके सामने से गाड़ी चला पड़ती है। स्टेशन पर पहले पहुंचने के बावजूद उसको आंखों के सामने से ट्रेन निकल पड़ती है। क्या यह यात्री पसन्दों है या समय का तकाजा कहना मुश्किल है। इस पर कोई समाजशास्त्री के अध्येता ही कुछ खोज सकते हैं। वैसे कहने वालों की कमी नहीं है। जैसे बीमारियों का इलाज करने को सलाह किसी डाक्टर से होती है, लेकिन मनोचिकित्सक रोग को दवा हर कोई बता देता है। कहने का अभिप्राय यह है कि वैकल्पिक पत्रकारिता को कर्तव्यान समय में उलझाने की कोशिश की जाती है और वैकल्पिक पत्रकारिता उस दिशा से बाहर निकलना

चाहती है। उसके पास भी पाठक हैं, जो सिर्फ विज्ञापन पढ़ने के लिए ही अखबार नहीं खरीदते हैं बल्कि एक विचार को सही रूप से देखने के लिए अखबार या पत्रिका खरीदते हैं। सही अर्थों में पत्रिकाओं और पत्रों के जरिये ही जनता की भावना और उसकी अभिव्यक्ति को नयी दिशा दी जाती है।

वैकल्पिक पत्रकारिता के समक्ष अभिव्यक्ति की समस्याएं हैं, यानी अभिव्यक्ति-स्वातंत्र्य का संकट इसे ही क्यों झेलना पड़ता है; इसलिए कि यह पत्रकारिता जिस सच को स्थान देती है, उस सच को मुख्यधारा की पत्रकारिता स्थान नहीं दे पाती है।

वैकल्पिक पत्रकारिता शासक वर्ग की नीतियों को चुनौती देते हुए यह साबित करने की कोशिश करती है कि शासक वर्ग की नीतियों में कहां खामियाँ हैं, उन खामियों को कैसे दूर किया जाय, यही तो विकल्प है; जिस पर शासक वर्ग को आपत्तियां होती हैं और आपत्तियां उठते ही शासक वर्ग की तरफ से कानून के डंडे बरसने लगते हैं। इसके कई उदाहरण दिखते हैं, जिनका विश्लेषण अपेक्षित नहीं है, क्योंकि वैकल्पिक पत्रकारिता से जुड़े पत्रकार इस संकट को झेल रहे हैं और उन सभी चुनौतियों का मुकाबला कर रहे हैं। वैसे मुख्यधारा की पत्रकारिता इस संघर्ष का नोटिस तक भी नहीं लेती है। इसके बावजूद वैकल्पिक पत्रकारिता की जय-यात्रा जारी है।

इस वैकल्पिक पत्रकारिता के अंतर्गत लेखक और लेखन पैदा करने की शक्ति होती है। लेखन में धार होती है। इस पत्रकारिता के लेखकों को अपने विचार प्रस्तुत करने की आजादी है। खुलकर बहस करने का जमीर इसी लेखन में होता है। वास्तविकता को स्थान देने की क्षमता इसी पत्रकारिता में होती है। वास्तविक चरित्र को उभारने की दूर-दृष्टि इस लेखन का मौलिक अधिकार है। इस मौलिक उद्भावना के माध्यम से समाज को जाग्रत बनाने की दिशा में इस पत्रकारिता के

Scanned by CamScanner

एक-एक शब्द महल बनाने की एक-एक ईंट की बराबरी करते हैं। सच्चे अर्थों में वे शब्द नींव की ईंट हैं और जहां नींव मजबूत होगी, वहां दीवार मजबूत करना आसान होता है। मजबूत दीवारों से अपेक्षा रखना खराब नहीं है।

पत्रकारिता जगत से जुड़े विशेषज्ञों और विश्लेषकों का मानना है कि पूंजी के अभाव में सिर्फ श्रम की बदौलत वैकल्पिक पत्रकारिता का प्रसार बढ़ता जा रहा है। इस प्रसार को कभी गुणवत्ता के आधार पर देखने की कसरत की जाती है, तो कभी कलावादी तरीकों से उस पर हमला किया जाता है। इस तरह के हमलों में वैकल्पिक पत्रकारिता का चेहरा और निखरता है। इस निखार से उसकी कार्य क्षमता बढ़ती है। इससे इसका महत्त्व और हस्तक्षेप बढ़ता है। हस्तक्षेप करने के चलते विरोध उत्पन्न होता है।

विरोध को दार्शनिक आधार देने से विकल्प पैदा होता है। इसी विकल्प को देखकर सत्ता के गलियारों में चक्कर लगाने वाले महाप्रभुओं को भी भय सताने लगता है। ऐसी स्थिति में यदि शासक वर्ग की आंखें लाल हो जाती हैं, तो क्या गुनाह है? इस गुनाह को देखकर क्षमा करने की मुद्रा अपनाने के भी दृष्टांत नजर आते हैं। इन दृष्टांतों का विश्लेषण करते हुए इतिहास के जानकारों का मानना है कि यह मुद्रा एक तरह से शासक वर्ग की चालाकी है। इसका कदापि अर्थ यह नहीं है कि वैकल्पिक पत्रकारिता खाये-पीये-अघाये लोगों की चालाकी से अनभिज्ञ है। वह अनभिज्ञ नहीं है, इसलिए तो शासक वर्ग को सिर्फ इस पत्रकारिता से खतरा है।

जहां मुख्यधारा की पत्रकारिता पर एक तरह से नियंत्रण रहा है। जहां सरकारीतंत्र हर क्षेत्र में विनियंत्रण को बढ़ा देता है, वहीं इस क्षेत्र में वह अपना नियंत्रण नहीं खोना चाहता है। इस बारे में यह कहना अनुचित नहीं होगा कि जिस तरह एक समय ब्राह्मणों ने भय को नियंत्रित कर समाज में अपना वर्चस्व स्थापित किया

था, ठीक उसी तरह वर्तमान समय में मुख्यधारा की पत्रकारिता पर अपना वर्चस्व या नियंत्रण कायम कर सरकारीतंत्र अपना शिकंजा कायम करना चाहता है। पर जनतंत्र के मजबूत होने से उसका नियंत्रण कमजोर हो जाता है।

नियंत्रण कमजोर होते ही जनता के दरबार में निरीह-कमजोर- अदना-सा मामूली व्यक्ति बनकर पूछता-फिरता है कि कहां गलती हुई। जो कल तक अपनी शेखी बघारने में कोताही नहीं करता था, वह अचानक गिड़गिड़ाने क्यों लगता है? समाज-शास्त्र के अध्येता कहते हैं कि उसके प्रयोग में गलती हुई थी। इस गलती का लाभ जहां मुख्यधारा की पत्रकारिता उठाती है, वहीं वैकल्पिक पत्रकारिता उस गलती का ऐतिहासिक कारण खोजकर एक युग-सच को हाजिर करती है। कहने का अभिप्राय यही है कि युगीन सच को वैकल्पिक पत्रकारिता ही स्थापित कर सकती है। इसके बिना युग का सच उपस्थित नहीं हो सकता है।

युग-सच जब तक सही संदर्भ में समक्ष नहीं आता है, तब तक वास्तविकता का विश्लेषण नहीं हो सकता है। युग-सच यही है कि वर्तमान समय के महाप्रभु कान से देखते हैं और आंख से सुनते हैं। इस उत्तर- उत्तरआधुनिकता ने मानव के इंद्रियबोध को बदल दिया है, जिस बदलाव पर मुख्यधारा की पत्रकारिता बराबर पर्दा डाल रही है और वैकल्पिक पत्रकारिता उस पर्दे को उठाने का काम करती है। मुख्य रूप से इन दोनों पत्रकारिताओं के बीच यही द्वंद्व है। इस द्वंद्व को सपाटता के रूप में नहीं देखकर सामाजिक अंतर्विरोध के रूप में देखना लाजिमी है।

अंतर्विरोधों के वास्तविक विश्लेषण के बिना युग-सच को स्थापित करना मुश्किल है। यदि युग-सच मुनाफा है, तो वैकल्पिक पत्रकारिता इसका उद्घाटन करती है, यदि युग-सच बाजार की ताकत है, तो वैकल्पिक पत्रकारिता इस

Scanned by CamScanner

ताकत पर प्रहार करती है और प्रौद्योगिक विकास को एक हथियार के रूप में इस्तेमाल करती है। इसकी अर्थवत्ता भी उजागर करती है। उजागर करने की इस प्रक्रिया के जरिये वैकल्पिक पत्रकारिता की पहचान बनती है तथा संसाधन जुटाने की दिशा में वह दो-चार कदम आगे बढ़ती है। इस अग्रगति का ताना-बाना साहित्य-संस्कृति- दर्शन-इतिहास से बना होता है, जिसका लक्ष्य है संघर्षशील तबकों के संघर्ष को ऊर्जस्वित करना।

वस्तुत: वैकल्पिक पत्रकारिता समाज को ऊर्जा देती है और हर ऊर्जावान को महाकवि जायसी के तोते की तरह बतलाती है कि एक और पद्मिणी है, जो थोड़ी ही दूर पर है, जिसके लिए रत्नसेन की तरह तपस्या करने की जरूरत नहीं है बल्कि उससे एकजुटता कायम करना जरूरी है।

वैकल्पिक पत्रकारिता के अंतर्गत जितने पत्र-पत्रिकाएं प्रकाशित हो रही हैं उनके विभिन्न स्वरों को एक मधुर स्वर में तब्दील करना भी वैकल्पिक पत्रकारिता की चुनौतियां हैं। लेकिन घटनाक्रमों के विश्लेषण से पता चलता है कि विभिन्न मुद्दों पर उनका विरोध एक स्वर में होता है, जैसे महिला-उत्पीड़न, भ्रष्टाचार, किसानों की खुदकुशी जैसे लाखों मुद्दे हैं, जिन मुद्दों पर वैकल्पिक पत्रकारिता की समझ और सोच एक है और एक तरह की है।

वैकल्पिक पत्रकारिता की पहचान और संसाधन जुटाने की क्षमता जितनी दुरुस्त होगी, उसकी समझ और सोच में एकरुपता उतनी स्पष्ट होगी। इसी एकरूपता में उम्मीदों की झलक छिपी हुई है, जिसका आंकलन करने के लिए लाखों-लाख लेखकों का जुलूस चल रहा है, जो संजीवनी आन्दोलन को एक नया रूप और नया रंग देना चाह रहा है। यही रंग उत्तर- उत्तरआधुनिकता के युग में मानसिक संतुलन खोने जैसे भयावह रोग का असल इलाज है।

सच पूछा जाय, तो वर्तमान की लाइलाज बीमारी का सही सटीक प्रिसक्रिप्शन यही वैकल्पिक पत्रकारिता है ह्यवर्तमान समय में वैकल्पिक पत्रकारिता ही महिला, दलित, महादलित सहित उन तमाम गरीब-मेहनतकश तबकों को आगे बढ़ने की ताकत दे सकती है, जिन्हें आज तक बढ़ने का उचित मौका नहीं दिया गया। वैकल्पिक मीडिया को इस दिशा में पूरी तरह आगे बढ़ना चाहिए, इसके लिए दर्शक और पाठक द्वारा विशेष पहल करना वर्तमान समय का तकाजा है। यदि दर्शक और पाठक का आग्रह बढ़ता है, तो मीडिया बाध्य होकर उनके अनुसार अपनी कार्यशैली बदलने के लिए मजबूर है।

महिलाओं के सशक्तिकरण का सीधा अर्थ है सामाजिक विकास और सांस्कृतिक उत्थान। इस उत्थान और विकास की दिशा में मीडिया को कार्यान्वित करना संकल्प हो। इस संकल्प की बातें विद्यासागर, रवीन्द्रनाथ, स्वामी विवेकानन्द, राजा राममोहन राय जैसे मनीषियों ने स्थापित की थी, जिन्हें समाज में पूरी तरह लागू करना अभी भी बाकी है। उन मनीषियों के कार्यों को आगे बढ़ाने से भी हमारे समाज में महिलाओं का उत्थान संभव है। क्या हम इस ओर बढ़ सकते हैं? यदि इस ओर हमारा प्रस्थान नहीं होता है, तो इतिहास माफ नहीं करेगा। वैकल्पिक पत्रकारिता इस सच को समझ रही है। इसलिए इससे अधिक से अधिक महिलाएं जुड़ रही हैं।

सामाजिक न्याय और समान अधिकार

मीडिया मानवीय रूप को स्थापित करता है या नहीं इस प्रश्न के आधार पर मीडिया को जब पकड़ने (!) की कोशिश की जाती है, तब यह बात उभर कर आती है कि मीडिया लोगों के बीच करुणा को जन्म देता है। चाहे घोटालों की खबरें हो या बलात्कारों की; खबरों के जरिये मीडिया ने समाज में एक हलचल पैदा की है। इस हलचल को देखकर समाज हतप्रभ हो सकता है कि आखिर

Scanned by CamScanner

क्या कारण है कि यह सब हो रहा है? पर समाज यह अच्छी तरह समझता है कि कहीं बाहर से दबाव तो नहीं आ रहा है, इसलिए हलचल मच रही है।

बाहर से आते दबाव का स्वागत करने के लिए वर्चस्वशाली लोग तत्पर दिखते हैं, पर 'कहने' के नाम पर बार-बार अपने भीतर को जगाने में मशगूल रहते हैं। यदि वर्चस्वशाली लोगों का गठजोड़ इस दबाव से नहीं हो, तो समाज बेहतर ढंग से आगे बढ़ सकता है। सत्तापक्ष चाहता है कि समाज में शांति रहे, लेकिन वह परोक्ष रूप से अशांतिपरक तत्वों को बढ़ावा देता है, जबकि विपक्ष अशांतिपरक तत्वों से खुला संघर्ष करते हुए सारी शांतिमय शक्तियों को मानव-कल्याण के हित में लगाने का प्रयास करता है। इन तत्वों पर नजर रखनेवाले विद्वानों ने स्वीकार किया है कि संघर्ष में ही जीवन है। मीडिया हर तरह की समस्याओं को इतमिनान से देखता है और उसका एक निष्कर्ष निकालता है।

समाज में जो घटनाएं घटती हैं, उन घटनाओं का विश्लेषण करने की अपेक्षा मीडिया के समक्ष यही प्राथमिकता होती है कि अधिक से अधिक लोगों के पास यह खबर पहुंचे, आखिर क्या हो गया? विश्लेषण समाज करे। यह सच है कि मीडिया अपनी प्राथमिकता तय करते वक्त बाजारवाद की सारी शर्तों को स्वीकार करने के बावजूद किसी कीमत पर अभिव्यक्ति की आजादी से समझौता नहीं करता है, हालांकि अभिव्यक्ति की आजादी ही सारी समस्याओं का समाधान नहीं है। लोग अपेक्षा रखते हैं कि सभ्य समाज को बोलने दिया जाय।

खासकर विगत बीस सालों में भारतीय महिलाओं को मुखर नहीं होने दिया गया। इसका अर्थ यह नहीं है कि आज से बीस साल पहले महिलाओं को मुखरित करने के लिए कोई विशेष मुहिम चली हो। इन बीस सालों में महिलाओं के अर्जित अधिकारों पर कुठाराघात करने के नये-नये तिकड़म बनाये गये। महिलाओं ने इन प्रपंचों के विरुद्ध संघर्ष किया है। इस संघर्ष को महिलाओं ने

उत्कर्ष पर पहुंचाया है, इसलिए पुरुष प्रधान समाज को महिला-सशक्तिकरण का नारा देना पड़ा। महिलाएं तभी शक्तिशाली हो सकती हैं, जब उन्हें आर्थिक तौर पर मजबूत किया जा सके। मीडिया इस ओर ध्यान दे रहा है। इसलिए महिलाओं के मुद्दों को उपस्थित करने में मीडिया इतनी दिलचस्पी रखता है।

अखबार के पेज हों या टीवी के चैनल-हर जगह महिलाओं से सम्बन्धित खबरों को प्रमुखता दी जाती है। इन खबरों को और तन्मयता के साथ उपस्थित करने की आवश्यकता है। मीडिया इस ओर काफी प्रयास कर रहा है। इन खबरों को पढ़ने वाले पाठकों तथा इन खबरों को देखनेवाले दर्शकों की संख्या बढ़ती जा रही है। इन खबरों को स्थान देने से विज्ञापन भी बढ़ता है। सत्ता और मीडिया के बीच जो गठजोड़ बनने लगता है, उस पर भी अंकुश लगता है।

स्त्री-विमर्श के नाम पर जो हो रहा है, उसे बढ़ावा मिले या न मिले पर महिलाओं से सम्बन्धित खबरों को प्राथमिकता देने के साथ-साथ उनके अधिकारों को सुनिश्चित करना वर्तमान में और प्रयोजनीय हो गया है। यदि महिलाओं के अधिकारों को सुनिश्चित किया जा सके, तो इस तूफानी दौर में भी महिलाओं को समाज की पहली पंक्ति में सर्वोपरि स्थान दिलाया जा सकता है। मीडिया ने इस संघर्ष में भागीदारी की है। इसलिए यह कहा जा सकता है कि महिलाओं की सुरक्षा के सवाल पर देश-दुनिया एकजुट है। यही एकजुटता नयी सुबह आने का संकेत है।

गांव से लेकर शहर तक महिलाओं पर दिन-ब-दिन अत्याचार बढ़ता जा रहा है। क्या घर, क्या बाहर हर जगह एक ऐसी भयानक स्थिति पैदा हो गयी है, जिसे बदलना जितना आवश्यक होता जा रहा है, उतना ही यह काम कठिन लगने लगा है। वैसे मीडिया ने अपने ढंग से इस मुद्दे को उठाया है। आने वाले दिनों में भी यह मुद्दा अपने ढंग से चलता रहेगा। लेकिन वर्तमान में इसकी स्थिति खराब

Scanned by CamScanner

हो गयी है। इसे सुधारने के नाम पर जो पहल शुरू हुई है, वह संतोषजनक नहीं है। सच तो यह है कि भारतीय मीडिया पूरी तरह वैश्वीकरण के चक्कर में फंस गया है। इस चक्कर को तूफान ही कहना समीचीन होगा, क्योंकि हवा काफी तेज है। किस तरह इसने भारतीय समाज को अपनी संस्कृति और अपनी मनीषा से अलग कर दिया है। उसका अंदाज लगाना मुश्किल है। यह सच है कि बीमारी काफी तकलीफ दे रही है, लेकिन इसकी औषधि खोजने पर नहीं मिल रही है। सच तो यह है कि इस कष्ट का स्रोत भारत की वर्तमान राजनीतिक परिस्थितियां है, इन परिस्थितियों को बदलने से महिलाओं को सामाजिक न्याय और समान अधिकार मिल सकता है।

महिलाओं के सशक्तिकरण करने का कोई दूसरा विकल्प अभी जन मानस के सामने नहीं है, इसके बावजूद महिलाओं को वंचित किया जा रहा है। विधायिका में महिलाओं को 33 प्रतिशत आरक्षण दिया जाता, उससे भी उनके जीवन में एक सकारात्मक परिवर्तन आ सकता है। लेकिन इस ओर भी समाज का ध्यान नहीं जा रहा है। इसलिए मीडिया भी इसको उतना महत्व नहीं दे रहा है, जितना उसे महत्व देना चाहिए था। एक बात सच है कि मीडिया ने वर्तमान में विभिन्न कार्यक्रमों के जरिये महिला-कलाकारों का निर्माण किया है। इन कलाकारों के जरिये परिवर्तन की गूंज सुनायी पड़ती है, पर वास्तविक परिवर्तन अभी तक सतह पर नहीं आया है। इस परिवर्तन को तब तक नहीं देखा जा सकता है, जब तक कि महिलाओं को आगे बढ़ने के लिए समुचित स्थान न दिया जाय। विकास की राह को प्रशस्त करने के लिए मीडिया काफी चेष्टा कर रहा है। साथ ही उसे ठोस कार्यक्रमों के आधार पर महिलाओं के सशक्तिकरण करने पर विशेष ध्यान देना होगा।

स्वामी विवेकानन्द ने भी स्पष्ट शब्दों में कहा है कि स्त्री त्याग और पवित्रता की मूर्ति है। जिन जातियों ने स्त्रियों की पूजा की है, वे जातियां काफी बढ़ी हैं। वर्तमान समय में स्वामी जी की यह उक्ति अत्यन्त उपयुक्त है। इस उक्ति को

समाज में आज स्थापित करना जरूरी है, तभी जाकर इस समाज में महिलाओं को सामाजिक न्याय और समान अधिकार दिलाया जा सकता है।

खूबियों-खामियों के बीच शुभ संकेत

तूफानी दौर में भी विमर्श की लौ और तेज हुई है। विमर्श की लौ और मोमबत्ती की लौ के द्वंद्व को आज के संदर्भ में देखने की आवश्यकता है। इस आवश्यकता पर चर्चा करने के उद्देश्य से विभिन्न तरह की टीवी टॉक्स और परिचर्चाएं शुरू हुईं। स्त्री-विमर्श पिछले दो दशकों में भारत की धरती पर बढ़ा है। इसका लाभ जिस तरह से सतह पर दिखने की जरूरत है, वैसा कुछ परिणाम सामने नहीं आ पाया। पर कहने के लिए आवाज तेज हुई है। सच तो यह है कि विगत साल के अंत में मीडिया की आवाज तेज थी, लेकिन आवाज गूंज बनने के बदले शोर में तब्दील हो गयी। शोर में बदलने के चलते स्थिति में कुछ परिवर्तन दिखा।

परिवर्तन ने मानव सभ्यता को आगे बढ़ाने के बदले उसे थोड़ी देर के लिए रोकने की चेष्टा की। कहने का अभिप्राय यही है कि यदि स्त्री-विमर्श की आवाज गूंज में तब्दील होती या हकीकत के आधार पर कोई एक नारा बनता, तो कुछ कामयाबी हासिल होती। निश्चित रूप से यह कामयाबी व्यक्तिगत तौर पर न देखकर उसे सामाजिक आधार ही देना उचित है। इस उचित कार्रवाई को अंजाम या दिशा देने का प्रयास वही कर सकता है, जिसके पास दृष्टि है। इसलिए दृष्टि की जरूरत पड़ती है। यही दृष्टि लोगों को रास्ता दिखाने का प्रयास करती है।

प्रवृत्तिपरक आलोचना के अध्ययन-मनन के जरिये जिस तरह उपनिवेशकाल में भारत की धरती पर चल रहे जन-आन्दोलनों को ऊर्जा नहीं मिली, ठीक उसी तरह आजादी के 65 साल बाद भारत की धरती पर जो आन्दोलन चल रहे हैं, उन आन्दोलनों को इससे ऊर्जा नहीं मिल रही है। यदि विमर्श से जन-आन्दोलन

Scanned by CamScanner

को ऊर्जा नहीं मिलती है, तो विमर्श का इतिहास उस तरह से नहीं लिखा जा सकता है, जिस तरह से इतिहास लिखा जा रहा है। सही अर्थों में भारतीय मीडिया ने इतिहास से काफी सीखने के बावजूद दर्शन का पुट अपने कथानकों में रखने से हिचक रहा है। यही कारण है कि मीडिया के प्रायः सभी प्रतिवेदनों में थोड़ा कुछ-न-कुछ बदलाव दिखने लगता है।

भारतीय मीडिया को पूरी सजगता के साथ यह बतलाना होगा कि आखिर वह किस रूप में दर्शन को अपना रहा है। दर्शन को अपनाने के दौरान यह देखा जाता है कि दर्शन के अनुयायी एक रहस्य का पर्दा टांग देते हैं। गहराई में जाने से यह लगता है कि मीडिया इस पर्दे को नोंच फेंकने की जी-जान कोशिश करता है। यह नोंचने की प्रक्रिया काफी तकलीफदेह है। मीडिया जोखिम उठाकर इस प्रक्रिया को अंजाम देता है। इस दौरान उसे मेहनत करने के साथ-साथ और कई मोर्चे पर लड़ना पड़ता है। मीडिया एक साथ कई मोर्चे पर भिड़ंत शुरू करता है।

मीडिया को स्त्री-विमर्श को जहां हवा देना चाहिए था। उसने ठीक इसके विपरीत स्त्री-विमर्श से मुठभेड़ शुरू कर दिया। यह एक ज्वलंत प्रश्न है। इस प्रश्न को कुछ मीडिया विशेषज्ञों ने उत्तर-आधुनिकता के आईने में देखने का प्रयास किया है। उत्तर-आधुनिकता के युग में अधिकांश मीडिया-विशेषज्ञों ने स्त्री-विमर्श के गुणों को मीडिया के जरिये प्रसारित करने के सम्बन्ध में अपने मत को रखा है। उनके अनुसार मीडिया एक तटस्थ माध्यम है, जो चाहे इसका इस्तेमाल कर ले। सच्चाई यह है कि मीडिया को कोई इस्तेमाल नहीं कर सकता है। यदि कोई इस्तेमाल करने का प्रयास करता है, तो यही समझना चाहिए कि आज नहीं तो कल ऐसे जीव को मीडिया के भंवर में फंसना है। इस संदर्भ में उन लोगों को याद करना अनुचित नहीं होगा, जिन लोगों ने मीडिया के नियम कानूनों को अपने तौर-तरीकों से इस्तेमाल करने की वजह से कानून की नजर में अपना स्थान नहीं बनाया। जो चले थे दरोगा बनने के लिए दुनिया ने उन्हें ही चोर क्यों मान लिया? क्या जरूरत थी अपनी शान दिखाने की!

जिन चैनलों की एक खबर के चलते सरकार कांपने लगती थी, नौबत यह आ गयी उन चैनलों के सम्पादक-पत्रकारों को कटघरे में खड़ा होना पड़ा। क्या उन्होंने भी गांधी की तरह देश की आजादी के लिए जेलों की यात्रा शुरू कर दी! यह सब तभी होता है या तथाकथित पंडित करते हैं, जब उन्हें अपना ज्ञान दिखाने की बात सूझती है। दर्शन से सही परिचय नहीं होने के कारण मीडिया को भटकना पड़ता है।

मीडिया वास्तविक तौर पर बाजार की शर्तों के अनुसार स्त्री को मुक्ति करने की लड़ाई को बल पहुंचाना चाहता है। समाज के कुछ वर्चस्वशाली लोगों का कहना है कि मीडिया समाज में हो रहे नकारात्मक पहलुओं को क्यों उछालता है? मीडिया को यह काम नहीं करना चाहिए। यह सुनने में अच्छा लग सकता है, लेकिन परोक्ष रूप से यह अभिव्यक्ति स्वाधीनता पर अंकुश लगाने का एक सॉफ्ट तरीका है, जिसे शासक वर्ग पूरी तरह सोच-समझकर लागू करता है। छोटे-छोटे कार्यक्रमों से लेकर खुले अधिवेशनों को विधिवत आयोजित करते हुए शासक दल यह बताना चाहता है कि मीडिया खराब कर रहा है। मीडिया द्वारा समाज के खराब पहलुओं को उद्घाटित करने से हमारी नयी पीढ़ी खराब हो जायेगी। हमारी नयी पीढ़ी खराब देखकर खराब ही सीखेगी। मीडिया को यह काम नहीं करना चाहिए। जब देखा जाता है कि मीडिया लगातार शासक वर्ग की गलतनीतियों को उजागर करने लगता है, तब विभिन्न तरीकों से मीडिया के कार्यों पर अंकुश लगाने के लिए चेतावनी दी जाती है।

दरअसल नयी पीढ़ी क्या सीखेगी; क्या अच्छा से अच्छा सीखा जाता है या खराब देखकर खराब ही सीखा जाता है, इस तरह के प्रश्नों का कोई सीधा उत्तर नहीं है, क्योंकि सीखने या नहीं सीखने का कोई मानदण्ड निर्धारित नहीं है। खराब देखकर अच्छा भी सीखा जा सकता है और अच्छा देखकर खराब भी सीखा जाता है। उदाहरण के लिए वाल्मीकि का नाम लेना अनुचित नहीं होगा क्योंकि उन्होंने शिकारी द्वारा क्रौंच के मारे जाने के बाद ही रामायण की रचना की। साहित्य-सिद्धांत के अंतर्गत यह कहा जाता है कि किसी रचना में जितना बड़ा खलनायक होता है, उस रचना का नायक उतना महान होता है तथा वह रचना

Scanned by CamScanner

उतनी ही महान होती है। पर मीडिया में ऐसा नहीं होता है। खासकर भारतीय मीडिया को खूबियों-खराबियों के बीच अच्छा खोजना ही होगा अपने लिए नहीं, पूरे समाज के लिए। इस ओर पाठक-दर्शक ध्यान दें, तभी जाकर शुभ-संकेत मिल सकता है, जो मानव जाति को आगे बढ़ा सके।

५. मोमबत्ती की कांपती लौ में महिलाएं

इस दुनिया को औरत ही समझ सकती है कि आज समाज कितना खराब हो गया है, उसका नजरिया कितना बदल गया। इस सम्बन्ध में जितना कहा जाय, उतना कम है। इस सच को पत्रकार-कवि वर्तिका नंदा ने 'उर्मिला' शीर्षक कविता के जरिये प्रस्तुत करने की चेष्टा की। आज भी इस पूंजी प्रधान समाज में महिलाओं को पति मिल जाता है, वैसे 'रामायण' महाकाव्य में उर्मिला को भी पति मिल गया था, लेकिन पति प्रेम नहीं मिला था। इस प्रेम की ताकत को वर्तिका नन्दा ने एक अद्‌भुत अंदाज में देखा है। वर्तिका नन्दा ने 'उर्मिला' शीर्षक कविता में लिखा है लक्ष्मण की भक्ति दर्ज हो गयी इतिहास में/ हो गये वे अमर/ लेकिन तुमने कैसे काटे 14 साल/ यह सिर्फ तुम्हीं समझ सकती हो/ या फिर कोई वह/ जिसे पति तो मिला हो/ लेकिन पति प्रेम नहीं/ सही अर्थों में पुरुषों पर यह एक व्यंग्य है। पुरुष समाज ने इस व्यंग्य को सहज तरीके से ग्रहण कर लेता है।

इस व्यंग्य-बाण को पुरुष नहीं झेल सकता है। इसलिए वह मीडिया के जरिये एक कागज का बाघ बनाकर दर्शकों को डराने का काम करता है। सच तो यह है कि मीडिया उन तमाम खबरों को खबर बनने ही नहीं देता, जो महिला-जीवन से संबंधित हैं। उनके संघर्ष का बयान देने में भारतीय मीडिया को अभी काफी वक्त लगेगा। यही कारण है कि वर्तिका नन्दा ने एक बेहतर बयान देते हुए कहा है, 'क्योंकि तुम औरत नहीं हो।' उन्होंने इस शीर्षक कविता में लिखा है पर तुम यह सब नहीं समझोगे/ समझ भी नहीं सकते/ क्योंकि तुम औरत नहीं हो/ तुमने औरत के गर्म आँसू की छलक/ अपनी हथेली पर रखी ही कहां?/

Scanned by CamScanner